ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-4* Issue-10* January- 2020
Anthology : The Research

ललित कलाओं का बदलता परिदृश्य और चुनौतियाँ (एक दृष्टि)

दिनेश कुमार वर्मा
व्याख्याता चित्रकला
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बूंदी (राजस्थान), भारत

सारांश

आदिम काल से मानव अपने विचारों को भावानुरूप रचता रहा। भावाभिव्यक्ति के इस दायरे में ही सृजनमय धारा कला विकास के साथ–साथ परिवर्तित होती रही। इस रूप में देखें तो कला मुख्यतः समय–काल व अभिव्यक्ति में होते रहें बदलाव और तत्प्रचलित माध्यमों एवं मानव की प्रयोगवादी प्रवृत्तियों पर केन्द्रित रही। यही, कला धारायें पारम्परिक कला क्षेत्र में ''गुरू शिष्य'' परम्परा के रूप में विकसित हुई, वहीं 20वीं सदी में स्थापित कला शिक्षण संस्थाओं में दृश्य व श्रव्य कला तथा कला इतिहास के संदर्भ की अकादमिक शिक्षा शुरू हुई। शिक्षण की सुविचारित व्यवस्था के साथ–साथ कला में आधुनिक व नूतन प्रयोगों की विविधता आने लगी। यही नहीं, वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के साथ–साथ कला सृजन में पश्चिमी कला रूझानों की दस्तक भी बढ़ती रही। चूंकि, आज का विद्यार्थी वर्तमान कला शिक्षा पद्धति के द्वारा कला के नये व पुरातन सिद्धान्तों, अवधारणाओं और नवीन कला प्रवृत्तियों से अवगत होना चाहता है। निसंदेह, मानवीय आचार–विचारों की परिवर्तनशीलता ही बदलती ललित कला धारा का कारण बनती रही।

ललित कलाओं को समझने व जानने के लिए रचनाकारों ने अपने विचारों को कई तरह से रचा है। भारतीय दर्शन के समरूप देखा जाये तो ललित कला मनोत्पन्न भावों की तुष्टि है। ललित कला भावमूलक ऊर्जा की आनन्दाभिव्यक्ति है। भावात्मक प्रदर्शन जिसका मुख्य ध्येय विशुद्ध आनन्द प्राप्ति हो उसे ललित कला कहते हैं।[1] सिद्धान्तवादियों तथा अधिकारी विद्वानों में प्रचलित ''ललित कला'' शब्द बहुत संश्लिष्ट है। कला शब्द किसी विचार (आइडिया) तथा उसके प्रस्तुतीकरण (एक्ज़ीक्यूशन) दोनों के हेतु प्रयुक्त होता है। ''ललित'' शब्द उस कृति के उद्देश्य तथा प्रकृति के सौन्दर्य का बोध करता है।[2] विषय के सन्दर्भ में प्रसिद्ध कला विचारक आनन्द कुमार स्वामी के मत का उल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने कला की समग्र चेतना को 'सत्यम्', 'शिवम्', 'सुन्दरम्' के सूत्र में बांध कर विवेचित किया। सत्य दर्शन का विषय है, शिव धर्म का अनुसंधान है और सुन्दरता कला का मूल श्रोत है। मानव की सौन्दर्यपरक प्रेरणा ही कला के उद्गम का आधार बनी। कला की निर्मिति में कलाकार को एक विशिष्ठ आनन्द की उपलब्धि होती हैं और आनन्ददाय ही कला का मुख्य उद्देश्य है।[3] ऐतेरेय ऋषि ने बताया है ''मनुष्य अपनी आत्मा के संस्कार के लिए कला सृजन करता है।'' आत्मानम संस्कुरूते– 'ऐतरेय' के सन्दर्भ में इसका अर्थ है जीवन को बेहतर बनाने की दृष्टि से इसका परिष्कार करना।[4] कला के क्षेत्र में आत्मा की अनुभति ही सत्य है जो सत्य है वह कला है और सुन्दर भी। कला आत्मा के आविर्भाव का नाम है। यह जीवन का अनुपम और अमूल्य अंग है।[5] इस प्रकार मानव जीवन की 'सत्यम्', 'शिवम्', 'सुन्दरम्', की अभिव्यक्ति ही कला है। यह ज्ञानाश्रित होने के कारण मन में आने वाले विचारों के आवर्तन का विश्लेषण कर सर्वसाधारण तक पहुँचाने में हमारी मदद करती है। 'कला' शब्द का मौलिक अर्थ है : कौशल अथवा हुनर। किसी कार्य के निष्पादन में मनुष्य द्वारा व्यवहृत एवं प्रदर्शित दक्षता, प्रवीणता, विशेषज्ञता, जिसकी प्राप्ति अभ्यास, अध्ययन, पर्यवेक्षण और प्रशिक्षण से होती है।[6] इस रूप में देखें तो मानव अपने भावों को प्रकट करने के लिये भिन्न–भिन्न शारीरिक क्रियाओं, व्यक्तव्यों, चित्रों तथा संकेतों का प्रयोग करता है। भावों को अभिव्यक्त करना आदिम काल से ही मानव मन की सहज व सुलभ प्रवृत्ति रही है। अभिव्यक्ति की इन कलाओं को कला माना गया है।[7] भारतीय दर्शन के समरूप देखा जाय तो ललित कलाओं की पाँच विधाऐं होती हैं, जिसमें चित्रकला, मूर्तिकला, काव्यकला, संगीत कला व स्थापत्य कला को रखा गया है। इनका

क्षेत्र विस्तृत और व्यापक है। इतना ही नहीं इनका अपना अलग–अलग इतिहास रहा है, बावजूद ललित कलाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई दिखाई देती हैं।

ललित कलाऐं कला सृजन का ऐसा माध्यम है जो तत्कालीन समाज की ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व धार्मिक पृष्ठभूमि का ठोस प्रमाण उपलब्ध कराती है। निसंदेह, कला में सदा ही समाज की समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में निहित रहा है। चाहे हम इसे चित्रकला के रंग, रूपों में देखें या मूर्तिकला में रूपायित गढ़नशीलता को, काव्य में सांस्कृतिक विचार धारा को देखें या संगीत में राग–रागनियों को तथा वास्तु कला में भवन संरचना को, सभी में समयकाल सृजन की विचारधारा निहित दिखाई देती है।

ललित कला में भाव, अनुभति, विचार तथा भाषा आदि समयानुकूल बदलती रही हैं कलाओं में यह बदलाव नवीनता की दृष्टि से आवश्यक ही नहीं स्वाभाविक भी है जो सृजनात्मक पहलुओं को दर्शाती है। युग–युगान्तर कला सृजन के साथ–साथ हमारे सामने कई चुनौतियाँ भी आती रही। कथ्य के संदर्भ में जिक्र करें तो ज्ञात होता है कि आदिम मानव की मूल प्रेरणा आखेटिय जीवन की रचनात्मकता से जुड़ी रही। शिलाग्रह में बैठा इस समय का आधुनिक कलाकार तात्कालिकता से किसी जनजाति के आखेटिय जीवन को काजल व गेरू से रेखांकित करता रहा। मध्यकाल की कला के जो साक्ष्य मिलते हैं उनमें धर्म प्रधान कला का सृजन होता रहा, साथ ही राजाश्रय विचार धाराओं की प्रवृत्ति भी बनी रही। मिश्र कला, ग्रीक कला, बाइजेन्टाइन, रेनेसा, बौद्धकला वही भारत में अजन्ता, एलोरा, जैन, राजपूत, मुगल व पहाड़ी आदि कलाऐं राजाश्रय, धार्मिक व राजनीतिक विचारों के इर्द–गिर्द फलती–फूलती रही। इन समूचित कला शैलियों का रचना विधान तत्कालीन परिवेश के रूप में रचा गया है।

कला में शान्त व समृद्ध परिवेश तथा राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का चित्रण देखा जाता है, वहीं समाज की विकृत प्रथाओं, हिंसा व पारम्परिक नीतियों का विरोध भी। कलाकार सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों से रूबरू होकर विभिन्न प्रवृत्तियों को ग्रहण करता है। भारत में राजनीतिक विचारधाराओं से विभिन्न बदलाव आयें वहीं कलाकारों के सामने समयानुकूल चुनोतियाँ भी। भारतीय कला सदैव से ही राजनीति की सहचरी बनकर रही है तथा राजनीतिक प्रभावों के साथ–साथ कला भी प्रभावित होती रही है।[8] कमोबेश इसके साक्ष्य हम आदिम काल से लेकर वर्तमान कला प्रवृत्तियों तक की कला के रूप में देख सकते हैं।

20वीं सदी में प्रभाववाद, उत्तर प्रभाववाद, फाववाद, घनवाद, दादावाद इत्यादि वाद–विषयक् विचारधाराओं ने कला सृजन के तात्विक विचारों को ही बदल दिया। यह प्रभाव चित्रकला में ही नहीं बल्कि मूर्तिकला, वास्तुकला, काव्य कला, व संगीत कला में भी कतिपय नवीन परिवर्तन के साथ प्रचलन में रहा।

भारतीय कला परिदृश्य में बदलती ललित कला धाराओं की प्रवाहशीलता को महत्वपूर्ण पड़ाव तब मिला जब आजादी से पूर्व देश में कला के पुर्नरूत्थानवादी विचाराभिव्यक्ति को आत्मसात किया और सृजन की वैचारिक प्रवृत्ति को देशज तथा पारम्परिक कला तत्वों से जोड़ने का रचनात्मक प्रयास किया। बंगाल के रेनेसावादी कला आन्दोलन का प्रभाव देश के कौने–कौने में फैलने लगा और कलाकार देशज विषयों को पारम्परिक कला व संयोजन की नवीनता के साथ रेखांकित व रूपांकित करते रहें।

स्वाधीनता के बाद भारतीय कला परिदृश्य में यूरोपीय कला की वैचारिकता से उत्प्रेरित कला का प्रभाव प्रवाहित हुआ तथा इस प्रवाह के साथ कलाकारों के निजी मनोभाव भी मूर्त–अमूर्त रूप में आकारित होते रहे। इस दौर से जुड़े कलाकारों ने अन्तर्राष्ट्रीय कला आन्दोलन की वैचारिकता का मंथन कर रचना कौशल व संयोजन की विशिष्ठता का स्वमार्ग खोजा ओर कला सृजन की आधुनिक प्रवृत्तियों से जुड़ते चले गये। नव नप्रवृत्तियों से सृजन तथा प्रयोगशील नजरिया ललित कलाओं की पाँचों धाराओं की रचनात्मकता में परिलक्षित होता दिखाई देता है।

भारतीय युवा कलाकार कला शिक्षा प्राप्त कर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनियों में अपनी कला का प्रदर्शन करने लगे। इतना ही नहीं, वैश्विक कला जगत की भावना से विदेशों में अध्ययन, प्रशिक्षण तथा कला प्रदर्शनियों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराते रहे। निसंदेह, बदलती वैश्विक प्रवृत्तियों के साथ अब कला में देशज तत्वों से ज्यादा वैश्विक भाषा मुखरित होने लगी।

समकालीन कला परिदृश्य का जिक्र करें जिसके प्रमाणित तथ्य तीव्र गति से परिवर्तित होते दिखायी देते हैं। आज कला में आदिम काल से आधुनिक काल तक की मिथक चेतना के साथ–साथ नव प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं। यह प्रवृत्ति कला की पाँचों विधाओं में देखी व समझी जा सकती है। कला में वैश्विक कला भाषा का आदान–प्रदान हुआ वहीं, वैज्ञानिक साधनों के बहुमुखी विकास ने कलाओं को कई तरह से प्रभावित किया। इस रूप में चित्रकला के क्षेत्र में देखा जाय तो माध्यम व तकनीक के साथ कला का स्वरूप बदला वहीं मूर्तिकला में रूपगत वैचित्र्य व रचना कौशल की तराशी तथा संयोजन के तौर तरीके बदले। इसी प्रकार काव्य में शब्दों का संयोजन व शब्दों के सारगर्भित अर्थ व भाषा का स्वरूप बदल गया। संगीत में ग्रामोफोन, रेडियों, टेलिविजन इत्यादि वैज्ञानिक साधनों व उपकरणों के आवागमन से लय की झनकार ही बदल गई। कशमकश, इस क्षेत्र में तो नफ़ासत का स्वरूप ही बदल गया। आज का वास्तुकार कला जगत में शिलाओं से चलकर कम्प्यूटर स्क्रीम तक पहुँच गया। इस प्रकार भौतिकवादी विचार धाराओं का दायरा बढ़ने से कला में नवीन प्रयोगों ओर माध्यमगत तकनीक की बहुलता बढ़ी तथा कलाकारों ने श्रव्य व चाक्षुष कला की भाषा को नया अर्थ प्रदान किया।

समकालीन कला में माध्यम और प्रयोग कहीं न कहीं कलाकार के भीतर सोये बिम्बों व ध्वनि को उत्तेजित करता है। निसंदेह, कला में बढ़ती संवेदनशीलता और रचनात्मकता कलाकार के आत्मिक चिन्तन को दर्शाती है। जिस प्रकार चित्रकला में विभिन्न रंगों व मिक्स मिडिया के तकनीकी प्रयोग की बहुलता देखने को मिलती है उसी प्रकार मूर्तिकला में भी विभिन्न पत्थरों का उपयोग, उनको कांटना–छांटना और आपस में जोड़ना, पत्थरों के साथ धातुओं को जोड़कर संयोजित करना तथा विविध धातुओं में मूर्ति ढालना बदलते परिवेश को इंगित करता है। इसी प्रकार ग्राफिक में नवीन तकनीक चातुर्य व माध्यम की उपयोगिता बढ़ रही है वहीं उसमें रूपगत व शैलीगत प्रयोगवादिता भी देखी जा रही हैं। बदलते दौर के मुताबिक और कला तकनीकों में भी खूब नए प्रयोग हुए हैं। चाहे वह रंगों का इस्तेमाल हो, कैनवास के स्पेस को घेरने की कला हो, बिम्बों के उकेरने की शैली हो या फिर विषयवस्तु को प्रस्तुत करने का अंदाज, हर जगह नई तकनीकों का इस्तेमाल देखने को मिलता है।[9] कला के विविध माध्यमों के संसाधनों के वैज्ञानिक विकास ने अभिव्यक्ति की संभावनाओं को अधिक स्वयं स्फूर्त बनाया। किन्तु इसके गतिमान रूप कैनवास पर ही नहीं ठहरकर रह गये एक्रिलिक और जल रंगों में, सेरीग्राफी और फोटोलिथों में ही अभिव्यक्ति का विकास नहीं हुआ बल्कि संस्थापन के एक नए आकार संयोजन का भी प्रादुर्भाव हुआ।[10] कतिपय कलाकार संस्थापन (इन्स्टालेशन) जैसे नवीन कला माध्यम में नवाचार को नयी भाषा व अर्थ प्रदान कर रहे हैं। कला सृजन के इस दौर में आत्मिक संतुष्टि की मीमांषा रचनात्मकता में तब्दील हो गयी है। बेशक, कला का रसास्वादन आनन्द की प्राप्ति बन गई। वैश्विक विचारों की तर्ज पर अपने निजी वैशिष्टय को व्यक्त किया जा रहा है। कलाओं में इन्स्टालेशन की प्रवृत्ति बढ़ी वहीं वेब डिजाईनिंग, ऑडियो–विडियो इत्यादि का प्रचलन भी बढ़ रहा है। कमोबेश कलाकार नवीनता के मार्ग पर इस हद तक गुजर गया कि उसने रचना संसार में अपनी स्मृति से सामाजिक फिनामिना के रंग–ढंग, बिम्ब, विषय वस्तु और अतीत व नियति के उन अस्पष्ट रूपों, काव्यांशों व राग–रागनियों को रचनात्मकता के साथ रचा है जो वस्तुतः बदलती ललित कला धाराओं को अभिव्यक्ति करती है। कला के अर्थ बदल चुके हैं। अमूर्तन से इन्स्टालेशन तथा कान्सेप्चुअल आर्ट, कम्प्यूटर कला तक के अभिनव प्रयोग कला जगत को समृद्धशाली बना रहे हैं।[11] इस प्रकार बदलती वैचारिक प्रवृत्तियों के मुताबिक कला में रसात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति हो रही है।

कला में उपभोक्ता वादी संस्कृति का वर्चस्व बढ़ रहा है वहीं हमें अपनी मौलिकता के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता भी है। यह एक चुनौती ही नहीं, वरन् समकालीन कला सृजन की महत्ती आवश्यकता भी है। आज का कलाकार बाजारवाद की ओर उन्मुख होने लगा है। क्योंकि कला बाज़ार के अनुरूप ही कलाकर्म और कला की विभिन्न प्रवृत्तियाँ अपनी दिशा निर्धारित कर रही है, जो केवल रचनाकारों और समीक्षकों की संवेदनहीनता का ही परिणाम है। वैश्वीकरण से जहाँ समाज भौतिकवाद की ओर प्रवृत्त हुआ है, वहीं सामाजिक मूल्य भी तीव्रता से परिवर्तित हो रहे हैं। समाज के अगुवा माने जाने वाले रचनाकार, चिंतक, लेखक, नाटककार, मौलिक रचना के माध्यम से एक सुखद और सुवासित वातावरण सृजित कर सकते हैं, पर ऐसे परिवेश के परिप्रेक्ष्य में स्वस्थ व संतुलित समीक्षकों की भूमिका अहम मानी जाती है, जो एक चुनौतीपूर्ण परिणाम को अभिव्यक्त करती है। इसके लिए स्वयं रचनाकारों तथा कला प्रेमियों को परिवर्तित होते सामाजिक, सांस्कृतिक व सौन्दर्य शास्त्रीय मूल्य, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा नवीन अन्वेषणों से साक्षात्कार करते रहना होगा। इस तरह हम देखते हैं कि आज चित्रकला या कला के क्षेत्र में बाज़ारवाद ने जिस तरह से प्रवेश किया है उसने चित्रकारों के सांस्कृतिक मूल्य बदल दिये हैं। आज के चित्रकारों (जिनका भारत में सबसे बड़ा समूह है) के सामने यह संकट भी है और बड़ी भारी चुनौती भी।[12]

सामाजिक धारणाओं के मद्देनजर पूंजीवादी विस्तार के पीछे दलीलों से खतरा बना हुआ है। समाज के भूमंडलीकरण में एक विशिष्ट प्रकार की राजनीति और संस्कृति फलने–फूलने की मांग करती देखी जाती है। यद्यपि कला पूंजीवादी लोगों का ठकुर सुवासी सुवागिन बनती जा रही है तदापि कलाकार कला के नवीन प्रतिमान के साथ आज भी कई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं।

ललित कला के प्रतिमान और मानव जीवन के प्रतिमान अलग–अलग होते हैं। मैं ऐसा मानना उचित नहीं समझता, यदि प्रतिमान का प्रयोग 'मूल्य' के अर्थ में हो। मूल्यांकन की परिधि में ललित कला धाराओं को समाज के लिए उपयोगी मानना यह चिन्ता का विषय है। यह दृष्टिमान उचित प्रतीत नहीं होता। निसंदेह, यह चुनौती पूर्ण कारण पूर्वाग्रह ग्रस्त प्रतिमानों का निर्धारण है। यह गलती देशकाल की सांस्कृतिक धारणाओं और चिंतकों की रूढ़ सोच के कारण ही हुई है। स्वार्थ, लोभ, मोह और जुगुप्सित आचरण और मनमोह लालसा के निषेधाकारी तत्व ही तो मूल्य है। जो वैश्वीकरण के दायरे में किसी भी संस्कृति की जद्दोजहद और प्रतिमान निर्धारित करने में सहायक होते हैं। वैश्वीकरण के दौर में राष्ट्रों व क्षेत्रों तथा स्थानों के सभी मूल्यों, प्रथाओं और परम्पराओं में बदलाव की नितान्त आवश्यकता है चूंकि वैश्वीकरण मूल्यों और संस्कृतियों के निरपेक्ष संभागीकरण की मांग करता है। यह ऐसी विचारधाराऐं हैं जो सृजनधर्मियों को ललित कला के प्रतिमानों में संशोधन को सतर्क करने में शायद सहायक साबित हो सकेगा, ऐसा मेरा मानना है।

सन्दर्भ

1. Co-ordinator : Tak, Prof. Maya Rani, Dr. Reeta Pratap, Changing Scenario of the Fine Arts, University of Rajasthan, Jaipur 2009-10, p.38.
2. अग्रवाल, डॉ. गिर्राज किशोर, कला निबन्ध रू ललित कला प्रकाशन अलीगढ़ प्रथम संस्करण, 1971, पृष्ठ 13.
3. वर्मा, धीरेन्द्र रू हिन्दी साहित्य कोश (भाग–1), प्रकाशक, ज्ञानमण्डल वाराणासी, द्वितीय संस्करण 1963, पृष्ठ 172.
4. राय, निहाररंजनः भारतीय कला का अध्ययन, दि मैकमिलन कंपनी आफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1978 पृष्ठ 58.
5. शास्त्री, रामप्रताप त्रिपाठी, सम्मेलन–पत्रिका, (कला अंक), सुरेन्द्र नारायण द्विवेदी, प्रधानमंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1880 शकाब्द, पृष्ठ 69.
6. डॉ. नगेन्द्र : भारतीय साहित्य कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 208.
7. शर्मा, डॉ. केशव कुमारः कला, कला शिक्षा, शिक्षा, साहित्यागार, एस.एम.एस. हाईवे, जयपुर, 1991, पृष्ठ 5.
8. सम्पादक मिश्र, अवधेश : कला दीर्घा, उत्कर्ष प्रतिष्ठान, लखनऊ, दृश्य कला की छमाही पत्रिका, अक्टूबर 2000, पृष्ठ 41.
9. सम्पादनः जोशी, डॉ. ज्योतिष : समकालीन कला, ल.क.अ., नई दिल्ली, अक्टूबर 2001, अंक 20, पृष्ठ 47.
10. सम्पादनः जोशी, डॉ. ज्योतिष : समकालीन कला, ल.क.अ., नई दिल्ली, मई 1996, अंक 17, पृष्ठ 16–17.
11. सम्पादक : मिश्र, अवधेश : कला दीर्घा, दृश्य कला की छमाही पत्रिका, अप्रेल 2003, वर्ष 3, अंक 6, पृष्ठ 31.
12. सम्पादक : मिश्र, अवधेश : कला दीर्घा, दृश्य कला की छमाही पत्रिका, अक्टूबर 2002, वर्ष 3, अंक 5, पृष्ठ 9.